आधुनिक हिन्दुस्तानी राग-पद्धति एवं उसके अध्ययनकरने की सरलतम विधि

पं० वि० ना० भातखण्डे

देवियों एवं सज्जनों,

आज के मेरे भाषण का विषय "आधुनिक हिन्दुस्तानी राग-पद्धति एवं उसके अध्ययन करने की सरलतम विधि" है। फिर भी, इस विषय की ओर बढ़ने के पहिले मैं कुछ शब्द संगीत विषय के प्रति अपने समाज की धारणा के बारे में कहना चाहता हूँ। और प्रार्थना करता हूँ कि इस विषयान्तर के लिये मुझे क्षमा करेंगे।

जब कि, आज की सांगीतिक-अवस्था में ऐसे कई तत्व मिलते हैं, जिनसे संगीत-प्रेमियों को सङ्गीत की पूर्व-प्रतिष्ठा प्रस्थापित होने की आशा बंधती दिखायी देती है और जबकि हम आजकल पर्याप्त क्रियाशीलता के साथ कहीं-कहीं होनहार प्रतिभा भी देखते हैं—यह खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि जनसाधारण तो क्या, सुशिक्षित समाज द्वारा भी सांस्कृतिक दृष्टिकोण से संगीत की वास्तविक अवस्था को समझने एवं प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया गया। अनेक पर्याप्त सुलझे विचारों के व्यक्ति संगीत को अभी भी एक सहायक शोभा का विषय समझते हैं। जिसे वे खुशी से शिक्षा के पाठ्यक्रम से निकाल सकते हैं, यदि उन्हें यह आशंका हो जाय कि उनका उपहास पुरानी विचार धारा के अप्रगतिशील व्यक्तियों की तरह किया जायगा। यही नहीं, ऐसे भी व्यक्तियों के मिलने में कठिनाई न होगी जो पुरुषार्थ के लिए संगीत को अनुपयुक्त व्यवसाय समझते हैं। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि संगीत की तरह ऐसी अन्य कोई भी ललित कला नहीं है जिसे समाज द्वारा अनुचित घृणा प्राप्त हुई हो। सबको सहज सुलभ एवं प्राप्त हो जाने पर अत्यन्त आकर्षक और उपयोगी होते हुए भी आजकल इसका सच्चा मनोवैज्ञानिक और सौन्दर्य-पक्ष या तो उपेक्षित रहता है या उसे बिलकुल समझा ही नहीं जाता।

कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो यह कहते हैं कि सङ्गीत कुछ भी नहीं व्यक्त करता। वे कहते हैं कि सङ्गीत अधिक से अधिक अनुकूल ध्वनियों का समूह है जो कर्णप्रिय होने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। न तो यह भावनाओं को उन्नत करता है और न ही शक्ति प्रदान करता है। साथ ही मनुष्य के नैतिक स्वभाव को भी अछूता छोड़ देता है। इसमें न तो नैतिक और न बौद्धिक प्रभाव ही है। सङ्गीत पर एक यह भी आरोप लगाया जाता है कि यह अच्छाई और बुराई दोनों का ही माध्यम हो सकता है। परन्तु इस अंतिम

आरोप में कुछ विशेष बल नहीं है। कारण, यह संसार की किसी भी बात के विरुद्ध कहा जा सकता है। यदि सङ्गीत का उपयोग तुच्छ कार्यों में होता है तो यह सङ्गीत का दोष न होकर उसे तुच्छ कार्यों में उपयोग करने वाले व्यक्ति का है। जहाँ तक अन्य लाँछनों की बात है कि सङ्गीत में विकसित एवं उन्नत करने इत्यादि की शक्ति नहीं है, ऐसे राष्ट्रों का इतिहास और उनकी विशेषताओं का अध्ययन करना चाहिये जहाँ आजकल की शिक्षा के अन्तर्गत संगीत को उच्च स्थान प्राप्त है और उनके समाज की धारणाओं द्वारा उन परिणामों के सम्बन्ध में सहमत हुआ जा सकता है। इस विषय पर प्रसिद्ध लेखकों ने अपने विचार मुक्त कंठ से व्यक्त किये हैं और उनमें से कुछ मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ। वे कहते हैं :—

"सङ्गीत को उचित रीति से साधने पर इसका सुन्दर परिणाम मन और शरीर दोनों पर ही होता है। यह स्वास्थ्यवर्द्धक है, मनोरंजन का साधन है, चिन्ता एवं परिश्रम और मानसिक थकान से मृतप्राय स्नायुओं को पुनर्जीवित करता है। सङ्गीत थके हुए मस्तिष्क पर मनोरंजन एवं चेतना प्रदान करने वाला लाभकारी परिणाम उत्पन्न करता है, जो परिणामकारक होते हुए भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता।

"सङ्गीत की उच्च शिक्षात्मक उपयोगिता भी है। यह मस्तिष्क को उन्नत करता है और सौन्दर्य, ज्ञान एवं कलात्मक रुचि को जाग्रत एवं पोषित करता है जो सब में छिपी हुई होते हुए भी कुछ में ही दिखायी देती है। यह व्यवहार को परिष्कृत और भावुक स्वभाव को गहराई एवं कुलीनता प्रदान करके सुशोभित करता है।" एक और लेखक कहते हैं—"स्वर और लय आत्मा को रहस्यपूर्ण गहराई तक पहुंचाते हैं और देवत्व को छोड़कर ऐसा कोई विज्ञान नहीं है जो मनुष्यों को नम्र, सज्जन, व्यवहार कुशल और तर्क-पूर्ण बनावे। सङ्गीत बालकों के बनाने के लिये एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। यह हठवादिता एवं मनुष्य के विचार, व्यवहार की रुक्षता और अनौचित्य को दूर करता है। यह चरित्र में दृढ़ता, संयम और अनुरूपता की वृद्धि कर आनन्द की ओर अग्रसर करता है।" यह कुछ योरोपीय लेखकों के मत हैं। परन्तु यह सङ्गीत के विषय में हैं और इसलिये मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सङ्गीत पर लागू होते हैं। अनेक प्राचीन लेखकों ने भी सङ्गीत के प्रभाव की पूर्ण रूप से प्रशंसा की है। एक अति प्राचीन पुस्तक में इस प्रकार प्राप्त होता है :—

गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः।
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशं गतः॥
सामगीति-रतो ब्रह्मा वीणा-सक्ता सरस्वती।
किमन्ये यक्ष-गंधर्व-देव-दानव-मानवाः॥

एक शिशु, मृग या सर्प किस प्रकार सङ्गीत के परिणाम का अनुभव करता है, यह बतलाते हुए लेखक कहता है :—

तस्य गीतस्य माहात्म्यं के प्रशंसितुमीयते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेकैव साधनम् ॥

विद्वान् लेखकों के इन मतों से शंकित व्यक्तियों का समाधान और सङ्गीत की इस अमूल्य कला के विरुद्ध लगाये गये निराधार आरोपों का खंडन भी हो जाना चाहिये। जबकि हमारे पास स्थापत्य, मूर्ति, चित्रकला एवं काव्य पर अनेक तकनीकी एवं सौन्दर्य-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ हैं जो जनता को उपलब्ध हैं, सङ्गीत को अभी भी अपना स्थान प्राप्त करने के लिये संघर्ष करना है। "वास्तव में सङ्गीत कोई संकुचित कला नहीं है। यह कलाओं के बड़े विभाग की एक आवश्यक कड़ी है। अन्य कलाओं की भाँति इसकी उत्पत्ति के स्थान के विषय में देखना पड़ेगा। इसके आदर्श कार्य भी समान ही हैं।" ऐसे भी कुछ व्यक्ति हैं जो सङ्गीत को अन्य कलाओं से ऊँचा स्थान देते हैं। प्रोफेसर ब्लेसरना कहते हैं—"ललित कलाओं में संगीत सबसे कम भौतिक है। अन्य कलाओं की भाँति इसमें प्रकृति के अनुकरण करने का प्रश्न नहीं उठता। यद्यपि सङ्गीत की ध्वनियों में प्रकृति है, परन्तु इनमें सांगीतिक अन्तरालों या सरल अनुपातों का सिद्धांत—जिनके बिना संगीत सम्भव नहीं है—समझा नहीं जा सकता। देवियों और सज्जनों! इन विद्वान् लेखकों के मतों को आपके सामने रखने का मेरा उद्देश्य आपको इतना ही दिखाना है कि अब वह समय आ गया है जबकि संगीत कला के महान् कारण के विषय में तटस्थ या उदासीन नहीं रहना चाहिये। हमने इसकी बहुत समय तक उपेक्षा की ही है। संगीत राष्ट्र की संस्कृति का एक अंग है। और इस कारण इसे ऊँचा उठा कर सामाजिक क्षेत्र में उचित स्थान प्रदान करने के लिए हमें आवश्यक कदम उठाने के लिये अग्रसर होना चाहिये।

इन प्रारम्भिक संकेतों के साथ मैं आज के भाषण के सही विषय 'आधुनिक हिन्दुस्तानी राग-पद्धति और उसके अध्ययन करने की सरलतम विधि' की ओर लौटता हूँ। मैं आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धति यह वाक्य जानबूझ कर प्रयोग कर रहा हूँ। कारण, जैसा कि पूर्णतः विदित है, आज की प्रचलित पद्धति उन पद्धतियों के अनुसार नहीं है, जिन्हें अपने पूर्वजों ने समय-समय पर अपने समय के सङ्गीत के अनुकूल निर्मित किया और जिनका सविस्तार निरूपण उन्होंने विद्यमान ग्रंथों में किया है। प्रत्येक कला प्रगतिशील होती है और ऐसा ही सङ्गीत भी है। विभिन्न युगों की रुचि, उनके मनोविज्ञान और स्वभाव एवं राष्ट्र के चरित्र पर समय की गति के साथ अमिट छाप छोड़ने वाले विभिन्न प्रभावों के अनुसार अपने सङ्गीत में समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पं० शारंगदेव के सङ्गीत-रत्नाकर में निरूपित राग-पद्धति अधिक विशद्, अधिक वैज्ञानिक एवं महानतम राष्ट्रीय संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाली होने के कारण भरत-नाट्य-शास्त्र से पर्याप्त आगे बढ़ी है। ऐसा कहा जाता है कि भरत ने अपना ग्रन्थ चौथी या पाँचवीं शताब्दी ईसवी में लिखा। हम जानते हैं कि सङ्गीत रत्नाकर १३वीं शताब्दी के मध्य के लगभग लिखा गया। १६वीं, १७वीं और १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक लोचन, पुण्डरीक, हृदयनारायण अहोबल और श्रीनिवास के ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने से ही हमें दिखाई पड़ेगा कि इन ग्रन्थों में प्रतिपादित सङ्गीत पद्धतियाँ और भी विकसित हुई हैं।

और वे नाट्य शास्त्र और रत्नाकर की पद्धतियों से पर्याप्त भिन्न हैं। हम स्वयं २०वीं शताब्दी में हैं और आजकल की प्रचलित सङ्गीत पद्धतियों ने अन्य पद्धतियों को बहुत पीछे छोड़ दिया है।

फिर भी यहाँ एक बहुत आवश्यक परिस्थिति ध्यान में रखनी चाहिये कि यद्यपि प्रचलित सङ्गीत पद्धति ऊपर बताये शास्त्रीय ग्रन्थों की अपेक्षा पर्याप्त विकसित हुई है। परन्तु इसके मूलभूत सिद्धान्त वही हैं जो प्राचीन पद्धतियों के थे। वास्तव में यह सिद्धांत भारतीय पद्धतियों को भारतीय चरित्र प्रदान करता है। अब अन्य शब्दों में यही सिद्धान्त या विशेषताएँ भारतीय को अन्य पद्धतियों से पृथक करती हैं। मूलभूत सिद्धान्तों को रखने से प्राचीन और अर्वाचीन में एक प्रकार की अविच्छिन्नता भी बनी रहती है। जब कभी सङ्गीत में परिस्थितियाँ बदल जाने के कारण परिवर्तन हुए, विद्वान् शास्त्रकारों ने नये तत्वों की उपेक्षा या विरोध करने के स्थान पर उनका ध्यान रखा और सङ्गीत में उन्हें सम्मिलित किया तथा नये नियम एवं परिभाषाएँ बना कर नये रागों या अभिव्यक्ति के नये ढंगों को विषय के ग्रन्थों में उचित स्थान दिया। मुस्लिम काल के प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञों ने प्राचीन शास्त्रकारों की सङ्गीत-पद्धति में अनेक परिवर्तन किये। चूंकि उन्होंने यह देखा कि वह परिवर्तन स्थायी हो चुके थे एवं उनको छोड़ना या उनका तिरस्कार करना उचित नहीं था। ऐसा करने में उन्होंने अपने योग्य पूर्वजों द्वारा निर्धारित समय से मान्य सिद्धांतों का ही अनुसरण किया। रत्नाकर के दूसरे अध्याय में पंडित शारंगदेव कहते हैं :—

'यद्वा लक्ष्य-प्रधानानि शास्त्राण्येतानि मन्वते।
तस्माल्लक्ष्य-विरुद्धं यच्छास्त्रं नेयं तदन्यथा॥'

—वाद्याध्यायः

अर्थ—इस प्रकार के विज्ञानों में प्रचलित ढंगों का सदैव आदर किया जाना चाहिये। अतः यदि दोनों में भेद उत्पन्न हो तो उचित मार्ग यह है कि शास्त्र को इस प्रकार प्रतिपादित किया जाय कि वह प्रचलन से सन्धि कर सके।

निस्सन्देह यह एक अत्यन्त उचित नियम था। इस प्रकार के विधान के अभाव में कला किसी प्रकार उन्नति नहीं कर सकती। कल्लिनाथ ने—जिन्होंने ने दो शताब्दी उपरान्त इस महान् ग्रन्थ की टीका लिखी—ऊपर के श्लोक में प्रतिपादित सिद्धान्त इस प्रकार समझाया है :—

एतानि शास्त्राणि देशीविषयाणीत्यर्थः। लक्ष्यप्रधानानि लक्ष्यमेव प्रधानं येषां तानि। मन्वते आचार्याः। तस्माल्लक्ष्यविरुद्धं यच्छास्त्रं (बंगालरागादेर्मध्यमग्रहत्वाद्यभिधायकं) तच्छास्त्रं नेयमन्यथा। यथा लक्ष्यविरोधि न भवति तथा व्याख्येयमिति।

'येषां श्रुति-स्वर-जात्यादिं नियमो न हि।
नाना-देश-गतिच्छाया देशी रागास्तु ते स्मृताः॥'

वे इसके बाद, राग बंगाल के परंपरागत 'ग्रह-स्वर मध्यम' को आधुनिक सङ्गीतज्ञों के देशी बंगाल के 'पंचम' में परिवर्तित करने का आकर्षक उदाहरण देते हैं। हमें इस

स्थान पर उनके लम्बे तर्क को समझने की आवश्यकता नहीं है। सब चर्चा का सार यह है कि शास्त्र को प्रचार के साथ हाथ में हाथ मिलाकर रहने के लिये तैयार रहना चाहिये, और यदि यह लगता है कि प्रचार ने समाज पर दृढ़ अधिकार जमा लिया है और उसे किसी प्रकार परिवर्तित नहीं किया जा सकता तो ऐसी परिस्थिति में सबसे उत्तम उपाय प्राचीन शास्त्रकारों के मन्तव्यों का यथासंभव अनुसरण करते हुए नई शास्त्र रचना करना है। यह सिद्धान्त कल्लिनाथ के अनुयायी लेखकों ने अपनाया था। यह बात उनकी पुस्तकों को देखने से मालूम हो जायगी। सद्रागचंद्रोदय, नर्तन-निर्णय, रागमाला और राग-मंजरी के लेखक महान् सम्राट् अकबर के समकालीन पं० पुण्डरीक विट्ठल भी इसी सिद्धान्त पर चले हैं। वे कहते हैं :—

लक्ष्यप्रधानं खलु शास्त्रमेतत् निःशंकदेवोऽपि तदेव वष्टि।
यल्लक्ष्म लक्ष्यप्रतिबंधकं स्यात्, तदन्यथा नेयमिति ब्रवाणः॥

—सद्रागचंद्रोदय

इस लेखक के समय, अनेक प्रवर्तन हुए थे और इसे अपने आश्रयदाताओं द्वारा उन्हें संगीतशास्त्र में सम्मिलित करने का आदेश हुआ था। लेखक कहते हैं :—

संत्यस्मिन् बहुधा विरोधगतयो लक्ष्ये न लक्ष्मोदिते,
जानंतीह सुलक्ष्म-पक्षविगतिं केचित् परे लौकिकीम्।
तत्कुर्वन्तु सुलक्ष्म-लक्ष्य-सहितं रागप्रकाशं बुधाः,
इत्युक्ते बुरहानखान-नृपतौ विद्वत्सभामंडले।

जब उन्होंने चन्द्रोदय लिखा तब वह बुरहानखाँ की नौकरी में थे, ऐसा ऊपर के उदाहरण से प्रतीत होता है। जब उन्होंने नर्तन-निर्णय और रागमाला लिखी, वे अकबर के दो जागीरदार मानसिंह और माधवसिंह की नौकरी में थे। उनका कार्य अवश्य ही बहुत कठिन रहा होगा। उस समय के प्रचार के अनुरूप उनको लगभग नया शास्त्र ही लिखना पड़ा। अनेक पूर्णतः नये राग प्रचलित हो गये थे और उन्हें अपने लिखे जा रहे ग्रन्थ में स्थान देना था। अपनी रागमंजरी में वे कहते हैं :—

अन्येऽपि पारसीकेया रागाः परद-नामकाः।
संपूर्णाः सर्वगमकाः काकल्यंतरिताः सदा॥
रहायी देवगांधारे, कानरे च निशावरः।
सारंगे माहुरो नाम, जंगूलाऽथ बंगालके॥
देश्यामहंगको नाम, बारा मल्लार-नामके।
केदारेऽपि भवेत् सूहा, धनास्यां च इरायिका॥
जिजावंत्यां च हौसेनी, मालवे मुसलीककः॥
कल्याणे इमनो गायेत् सपर्दाऽथ बिलावले॥
देशिकारे बाखरेजः आसावर्यां हिजेजकः॥
देवगिर्यां मूशकाख्य एवमन्येऽपि योजयेत्॥

यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस महान् लेखक ने न केवल पर्शियन रागों के नाम ही गिनाये हैं वरन् उनकी तुलना भारतीय अनुरूपों से भी की है, जिससे कि उनके पाठकों को उनके गाने के सम्बन्ध में भी कुछ कल्पना हो सके। ऐसी धारणा है कि इन पर्शियन रागों को भारतवर्ष में लानेवाले अलाउद्दीन बादशाह के समय के महाकवि सरदार हज़रत अमीर खुसरू थे। अन्य रागों में अपने विभिन्न प्रकार के कान्हड़े, सारंग, टोड़ी, मल्हार और बिलावल मुस्लिम प्रभाव के प्राचीन राग प्रकारों के ही रूपान्तर हैं। इस प्रकार के रूपान्तर जो पुण्डरीक के समय तक प्रचलित हो चुके थे, उनके ग्रन्थों में सम्मिलित कर लिये गये थे। राग-विबोध के लेखक पं० सोमनाथ ने भी विदेशी रागों के बारे में इस प्रकार लिखा है :—

"इयं तुरुष्कतोडी इराखपर्यायतया कर्णाटगौडस्य समच्छायत्वेन परदा इति लोके। तथा च कैश्चित्तत्तद्राग-समच्छायाः परदाख्या द्वादश रागा उच्यंते। तोड्याः समृद्धया हुसेनी। भैरवस्य, जुलुफः रामक्रियायाः मूसली। आसावर्या उज्जवलः विहंगडस्य नवरोजः। देशकारस्य बाखरेजः। सैंधव्या हिजेजः। कल्याणयमनस्य पञ्चग्रहः। देवक्रयाः पुष्कः। वेलावल्याः सरपर्दः। कर्णाटस्य इराखः। अन्योपरागाणां सुगा दुगा इति।"

पं० भावभट्ट अपने अनूप-संगीत-रत्नाकर, अनूपांकुश और अनूप-विलास में अन्य रागों के बारे में भी लिखते हैं जो उपराग कहलाते हैं। वे विभिन्न कान्हड़ा प्रकारों के बारे में इस प्रकार लिखते हैं :—

"जो दरबारी सो सुद्ध कहावे, मलार मिलाय के नायकि जानौ।
बागेसरी धनासिरि के मिले मेघ मिले ग्रडानोहि जानौ॥
होत सहानो मिले फरोदस्त के, पूरिया जैतसिरी सुर जानौ।
मंगल अष्टक सोहि कहावत भाव कहे षटभेदहि जानौ॥
मुद्रिक गारा हुसेनि ग्रो काफि मिले बिधि भेद बखानत हैजू।
सोरटि और खंबावति सो मिले द्वादश भेद यों मानत हैजू॥
गौर कर्णाटि भेद ढूँ या मुनि भेद न पावत हैजू।
मूरछना ग्रह ग्रंस ग्रो न्यासनि मेल मिलोपिनि जानत हैजू॥

भैरव भेदाः

ग्रौडवः षाडवश्चैव संपूर्णश्च त्रिधा मतः।
बसंताद्यभैरवः स्यादानंदभैरवस्ततः॥
नंदभैरव-संज्ञस्तु गांधारभैरवस्ततः। स्वर्णाकर्षण-पूर्वस्तु तथा
पंचमभैरवः॥ नवधा भैरवः प्रोक्तः श्रीजनार्दनसूनुना॥"

इसके बाद यह पंडित नौ प्रकारों की गुर्जरी, सात प्रकारों के गौड़ इत्यादि के बारे में लिखते हैं। भावभट्ट शाहजहाँ के प्रसिद्ध दरबारी गायक जनार्दन भट्ट के लड़के थे। भावभट्ट राजा अनूपसिंह (१६७४-१७०९) के यहाँ नौकर थे। हम सब जानते हैं कि हमारे सङ्गीतज्ञ १८ प्रकार के कान्हड़े, १२ प्रकार के मल्हार, १२ प्रकार के तोड़ी, ८ प्रकार के सारंग और १२ प्रकार के बिलावल के बारे में कहते हैं। यह सब उपरागों के वर्ग में आते हैं।

यहाँ मेरी इच्छा यह बताने की है कि यद्यपि मुगलकाल के सङ्गीतज्ञों ने अनेक प्रकार के रागों का समावेश किया, हमको यह नहीं सोचना चाहिये कि इससे संगीत का आकर्षण क्षीण हुआ। मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जो यह मानते हैं कि हमारे संगीत को इस संपर्क से पर्याप्त लाभ हुआ। गाने का मिश्रित ढंग सचमुच बहुत रोचक था। आप सबने बैजू, गोपाल, बाबा हरिदास, रामदास, लालखाँ, तानसेन एवं अन्यों के नाम सुने ही होंगे। किस व्यक्ति में ऐसा साहस है जो यह सुझाव दे कि इन संगीतज्ञों ने वृद्धि नहीं की ?

इस प्रकार अपना आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत ही अपना प्राचीन संगीत है। चूँकि यह विदेशियों से शताब्दियों के संपर्क से एवं विदेशी राग प्रकारों के ग्रहण किये हुए अभिव्यक्ति के विदेशी ढंगों से रूपान्तरित हुआ है। अपने संगीत के प्रबन्ध में एक और विशेष परिवर्तन है। आप में से जिन्होंने संगीत रत्नाकर का अध्ययन किया है वे यह जानते हैं कि शारंगदेव के समय राग, एक अत्यन्त उलझी ग्राम-मूर्छना और जाति पद्धति से निकाले जाते थे। बाद में यह पद्धति संगीत में हुये परिवर्तनों के लिये एकदम अनुपयुक्त लगी, अतः इस सरलतम ढंग को स्थान देना पड़ा। तब, पुत्र और भार्या पद्धति से वर्गीकरण हुआ, जिसे कालान्तर में थाट या आधुनिक मेल में रागों के चतुर एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण ने हटाया। थाट शब्द का अनुवाद जनक-मेल या राग वर्ग की तरह-किया जा सकता है। रागों का उत्पादक होने के कारण थाटों को जनक सप्तक कहा जा सकता है। इस ढंग से विभिन्न रागों का वर्गीकरण एक निश्चित संख्या के रागवर्गों या थाटों में किया जाता है और थाटों की संख्या तथा उनका स्वरूप भिन्न लेखकों के अनुसार भिन्न हो सकता है। वर्गीकरण की पद्धति अभी भी प्रचार में है और इसलिए हिन्दुस्तानी संगीत के अध्ययन में प्रचलित सभी रागों का ज्ञान और उनका विभिन्न रागवर्गों में विभाजन निश्चित होता है। इसमें तालों का ज्ञान भी सम्मिलित है। यहाँ पर संगीत की पुस्तकों में वर्णित राग और थाट का अर्थ थोड़े में बता देना अनुपयुक्त न होगा। राग शब्द की परिभाषा अनेक प्रकारों से हुई है। कुछ इसका अनुवाद 'ट्यून', दूसरे एक 'एयर' और अन्य 'मेलोडी' की तरह करते हैं। इन सभी परिभाषाओं से भारतीय शब्द 'राग' की सही कल्पना नहीं होगी। राग की परिभाषा संस्कृत लेखक इस प्रकार करते हैं :—

"योऽयं ध्वनि-विशेषः स्यात्स्वर-वर्ण-विभूषितः।
रंजको जन-चित्तानाम् स रागः कथ्यते बुधैः।"

अर्थ—"राग ध्वनियों के (जिन्हें स्वर कहा जाता है) विशेष (निश्चित) समुदाय को कहते हैं और जिसमें वर्ण एवं श्रोताओं के मन को प्रसन्न करने की क्षमता होती है।" सङ्गीत के भारतीय विद्यार्थी को इस परिभाषा से कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। भारतीय संगीतज्ञ १५० रागों से अधिक कभी नहीं गाते। बहुत प्रचलित राग लगभग ५० ही हैं। शेष १०० में से बहुत से उपराग या उपांग राग (प्रकार) के वर्ग में आते हैं। इस प्रकार उदाहरणार्थ कान्हड़ा राग के १८ प्रकार, मल्हार के १३, तोड़ी के १३,

सारंग के ८, बिलावल के १२ इत्यादि हैं। संस्कृत ग्रन्थों में १०० से अधिक तालों के नाम हैं । हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति के अध्ययन करने का सबसे अच्छा ढंग पहले अति प्रचलित ५० रागों का अध्ययन करना है । ऊपर बताये हुए प्रकार बाद में आवेंगे ।

भारतीय संगीत के शास्त्र के अनुसार राग सदैव थाट (राग प्रकार) से उत्पन्न होता है। थाट प्रारम्भिक स्वर 'सा' से प्रारम्भ कर क्रमवार सात स्वरों की पंक्ति से अधिक कुछ भी नहीं है। स्वरों की स्थापना २२ संगीत ध्वनियों की पंक्ति पर—जिन्हें श्रुतियाँ कहा जाता है—होती है। 'सा' 'म' 'प' स्वरों की प्रत्येक की ४ श्रुतियाँ, 'रे' 'ध' 'ध' की प्रत्येक की ३ और 'ग' 'व' 'नी' की प्रत्येक की २ श्रुतियाँ होती हैं।

"चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडज-मध्यम-पंचमाः ।
द्वे द्वे निषाद-गांधारौ त्रिस्त्री ऋषभ-धैवतौ ।"

श्रुति शब्द 'श्रु' धातु (सुनना) से उत्पन्न होता है। जिसका अर्थ है—"कान से स्पष्ट सुनी जा सकने वाली कोई ध्वनि ।" फिर भी भारतीय संगीतज्ञ इस शब्द का इतना व्यापक अर्थ नहीं लगाते। वे इस शब्द का अर्थ सीमित कर कहते हैं :—

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत ।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत-श्रुति-लक्षणम् ॥

हम यह सहज ही समझ सकते हैं कि श्रुति शब्द के अर्थ सीमित करने का ध्येय है—(१) उस ध्वनि से जो संगीत के लिए उपयोगी हो और (२) वह ध्वनि जो कान से स्पष्ट रूप से पहचानी जा सके। यह साधारणतः मान्य है कि उत्तरोत्तर उच्च २२ ध्वनियों की पंक्ति को गाना कठिन होता है। सम्पूर्ण व्यवस्था इस प्रकार प्रतीत होगी :—

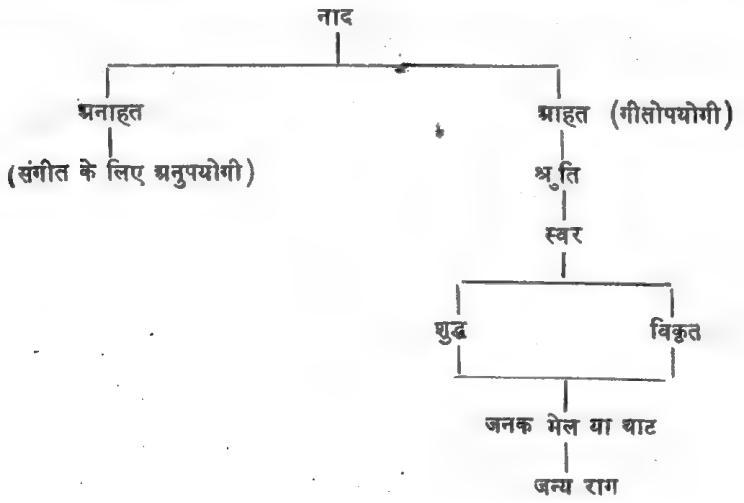

व्यवहार के लिये, थाटों की उत्पत्ति करने वाले रागों की रचना के लिए १२ स्वर ही माने गये हैं। स्वर दो प्रकार के होते हैं—शुद्ध या प्राकृत और विकृत। शुद्ध स्वर सात होते हैं और वे इस प्रकार गाये जा सकते हैं (उदाहरण)। विकृत स्वर ५ होते हैं (उदाहरण)। प्राचीन ग्रन्थकारों ने थाट की परिभाषा इस प्रकार की है :—

"मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजन-शक्तिमान्।"

अनुवाद—थाट स्वरों का वह समूह है जो रागों की उत्पत्ति कर सके। थाट और राग की संस्कृत परिभाषाओं को बता देने के बाद मैं उनके आवश्यक लक्षणों के बारे में बताऊंगा। चूंकि राग की उत्पत्ति थाट से होती है, अतः पहले थाट के लिये आवश्यक लक्षणों को बताना आवश्यक है।

(१) थाट में सप्तक के सात स्वर अवश्य होने चाहिये।
(२) यह स्वर क्रमानुसार होने चाहिये।
(३) थाट में एक ही स्वर के दो प्रकार एक के बाद दूसरा, आ सकते हैं।
(४) थाट श्रोताओं को रंजकता प्रदान करनेवाला होना आवश्यक नहीं है।

मैंने यह बताया ही है कि सात शुद्ध और पाँच विकृत ऐसे १२ स्वर होते हैं, इनसे थाट निकाले जाते हैं। भारतीय संगीतज्ञों के अनुसार सम्भव ७२ थाट होते हैं, जिनमें ऊपर लिखे चारों लक्षण मिलते हैं। अपनी चतुर्दण्डि-प्रकाशिका में पंडित व्यंकट-मुखी कहते हैं :—

यदि कश्चिन्नदुर्नीतो मेलेभ्यस्तद्विसप्ततेः।
न्यूनं वाप्यधिकं वापि प्रसिद्धैर्द्वादशस्वरैः॥
कल्पयेन्मेलनं तर्हि ममायासो वृथा भवेत्।
नहि तत्कल्पने भाललोचनोऽपि प्रगल्भते॥
तत्स्याद्यथैकपंचाशद्वर्णाः स्युमातृकामिधाः।
न हीयंते न वर्धंते तथा मेला द्विसप्तधिः॥

यह आपत्ति की जा सकती है कि ये पंडित उत्तर के न होकर दक्षिणी-पद्धति के शास्त्रकार थे। परन्तु इस आपत्ति का उत्तर सहज ही दिया जा सकता है। यह सच है कि देश में दो भिन्न संगीत प्रणालियां—दक्षिणी (कर्नाटकी) और उत्तरी (हिन्दुस्तानी) हैं। यह भी सच है कि दोनों पद्धतियों के राग नाम और गायन शैली एक दूसरे से भिन्न हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि मूल-सिद्धान्त, जैसे राग और थाट निर्माण करने की विधि दोनों पद्धतियों की समान नहीं है। अतः गणित पर आधारित व्यंकटमुखी की प्रस्तावना दोनों पद्धतियों पर समान रूप से लागू होगी। यद्यपि सप्तक के १२ स्वरों से ७२ थाट या मेल प्राप्त किये जा सकते हैं, पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि साधारण व्यवहार में वह सचमुच प्रयोग में आते हैं। हिन्दुस्तानी रागों को सरलता से वर्गीकृत करने के लिये थाटों की संख्या १० है। कम से कम मैंने अपने हिन्दुस्तानी राग पद्धति के ग्रन्थों में १० थाटों का ही उपयोग किया है। यह दस थाट इस प्रकार हैं :—

आदिमः सर्व-मेलानां वेलावली सुमेलकः ।
मेलः कल्याण-रागस्य, खंमाजस्य ततः परम् ।।
ततो भैरव-मेलः स्यात् पौरवी-मेलकस्ततः ।
मारवाख्यो भवेन्मेलः काफी-मेलस्ततः परम् ।।
आसावरी सुमेलः स्यादष्टमो लक्ष्यविन्मते ।
नवमो भैरवी ख्यातो दशमस्तोडिकाह्वयः ।।

(१) राग किसी थाट या जनक मेल से सम्बन्धित होना चाहिये ।

(२) इसमें कम से कम पाँच स्वर उस सप्तक के होने चाहिये जिससे यह उत्पन्न हुआ है ।

(३) इसमें निश्चित आरोह और अवरोह होना चाहिये ।

(४) यह श्रोताओं को आनन्द-दायक होना चाहिये ।

(५) इसमें एक ही स्वर के दो रूप जैसे कोमल 'रे' और शुद्ध 'रे' और कोमल 'ग' और शुद्ध 'ग' एक के बाद दूसरा, साधारण नियम के अनुसार नहीं आना चाहिये ।

(६) इसका एक निश्चित वादी स्वर होना चाहिये ।

(७) इसमें 'म' और 'प' स्वर एक साथ नहीं छोड़ने चाहिये ।

यह सभी लक्षण आवश्यक समझने चाहिये और इनका कड़ाई से पालन होना चाहिये । राग अपनी रचना में प्रयुक्त स्वरों के अनुसार औडव, षाडव और सम्पूर्ण होते हैं । इस प्रकार औडव राग में पाँच स्वर होते हैं, जैसे भूपाली, मारवा, हिन्डोल, मालकौंस । षाडव राग में ६ स्वर ही होते हैं, जैसे ललित, पूरिया । सम्पूर्ण राग में सात स्वर होते हैं, जैसे यमन, काफी, झिंझौटी । पाँच स्वरों से कम का कोई राग नहीं होता ।

यह सरलता से देखा जायगा कि रागों की यह तीन जातियाँ राग उत्पन्न करने वाले थाटों में वर्जित स्वरों के छोड़ने से प्राप्त की जा सकती हैं । यह ठीक ही कहा गया है कि :—

सप्तस्वर-समूहात्मा मेलः संपूर्ण ईरितः ।
षाडवौडुवभिद्द्वारा सोऽपिरागत्वमर्हयेत् ।।
शुद्ध-विकृत-स्वरैः स्युलोके मेला द्विसप्ततिः ।
प्रसिद्धाः पुनरेतेषु मेलाः कतिचिदेवहि ।।
मेलः सप्त-स्वरः पूर्णः षट्स्वरः षाडवो मतः ।
पंचस्वरैरौडुवः स्यादेवं मेलःस्त्रिधा मतः ।।
मेलानुसारतो लक्ष्ये रागे त्रैविध्यमीरितम् ।

जहाँ तक ऊपर बताए तीसरे लक्षण का सम्बन्ध है राग में आवश्यक रूप से आरोह

और अवरोह होता है। इनमें से प्रत्येक में औडव, षाडव या सम्पूर्ण जाति हो सकती है। इस प्रकार रागों की ९ जातियाँ मान्य की गई हैं—(१) सम्पूर्ण-सम्पूर्ण, (२) सम्पूर्ण-षाडव, (३) सम्पूर्ण-औडव, (४) षाडव-सम्पूर्ण, (५) षाडव-षाडव, (६) षाडव-औडव, (७) औडव-सम्पूर्ण, (८) औडव-षाडव, (९) औडव-औडव। अब यह देखना रुचिकर होगा कि एक ही जन्यमेल के कितने राग इन प्रत्येक विभागों में रखे जा सकते हैं। निम्नलिखित दो या तीन श्लोकों में संख्या निश्चित करने की विधि बताई गई है :—

सम्पूर्णस्वर-मेलोत्थो राग एक उदाहृतः।
तत्रैकैक-स्वरत्यागात् षड्विधः षाडवो भवेत्॥
पंचाधिक-दशत्वं हि स्वरद्वय-वियोगतः।
आरोहे चावरोहेऽपि स्वरत्यागः सुसम्मतः॥

इन श्लोकों में समझाई गणना को यदि हम देखें तो हम प्राप्त करेंगे कि ७२ जनक सप्तकों मेलों या थाटों में से प्रत्येक ऊपर निर्दिष्ट ४८४ राग उत्पन्न कर सकता है और सभी, ७२ मेलों से ३४-८४८ राग प्राप्त होंगे। जैसा आप देखेंगे यह राग आरोह और अवरोह पर ही आधारित हैं। हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों के जनक-मेलों में से राग उत्पन्न करने के कुछ अन्य तरीके भी हैं, जैसे :—

हिन्दुस्थानीय-पद्धत्यां मार्गाः स्युरपरास्तथा।
लक्ष्यविद्भिः समादिष्टा रागोत्पादन-हेतवः।
आरोहणे चालिता ये स्वरा न स्युर्विलोमके॥
अथ वैतद्विपर्यासो जनयेद्राग-भेदकम्।
रागोचित-स्वरेष्वेव विशिष्टा वक्रता भवेत्।
समान-स्वरपंक्तौ वा वादि-भेदाद्भवेद्भिदा॥

इन श्लोकों में वर्णित नियमों पर आधारित विभिन्न राग आसावरी, गांधारी, पीलू, खट, हमीर, बिलावल, सारंग, केदार, मल्हार, देशकार, भूपाली, भैरव, कालिंगड़ा इत्यादि गाकर संभवतः मैं यह और भी स्पष्ट कर सकूंगा।

राग के दूसरे आवश्यक लक्षणों की चर्चा करते समय मैंने तीसरे अर्थात् रागों के निश्चित आरोह और अवरोह के लक्षण के बारे में कहा ही है। दोनों के मिलने से राग बनता है। केवल आरोह या केवल अवरोह से राग नहीं बनेगा। जन्य-मेल से केवल आरोह-अवरोह के आधार पर ४८४ राग उत्पन्न हो सकने का मेरा अनार्ह कथन निःसन्देह शंकापूर्ण मालूम होगा। इस कथन के बाद आपको मुझसे यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे आधुनिक श्रेष्ठतम विशेषज्ञ भी दो सौ रागों से अधिक नहीं गा पायेंगे। उनमें बहुतांश १०० से अधिक भी कठिनाई से गायेंगे। प्रश्न उठेगा कि ऐसा क्यों? इसका कारण यह है कि इनमें से बहुत से राग असांगीतिक होने के कारण छोड़ने पड़ेंगे। अपनी चौथी शर्त यह

है कि राग श्रोताओं को प्रसन्न करने वाले होने चाहिये। यह कहा गया है कि—'रंजयतीति रागः'। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस शर्त में विभिन्न श्रोताओं की रुचियों का ध्यान रखना पड़ेगा। परन्तु, फिर भी इस शर्त में बहुत से राग जो राग की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं, हटाने पड़ेंगे। इसलिये यह कहा गया है :—

एवैकमेलतो रागा बहवः संभववंत्युत।
तेषामगाधरूपत्वात् संख्यां कर्तुं न शक्यते॥
तथापि रंजका नैव सर्व-लोके समंततः।
प्रसिद्धाः पुनरेतेषु रागाः कतिचिदेव हि॥
रंजनाद्रागता सिद्धा प्रसिद्धो नियमो भवेत्।
ततः संख्या सुरागाणां भवेन्मर्यादिता स्वयम्॥

अब हम राग द्वारा पूर्ण की जाने वाली बाकी शर्तों पर विचार करेंगे। क्रमांक ५ की शर्त इस प्रकार है। राग में एक स्वर के दो स्वरूप एक के बाद तुरन्त दूसरा नहीं आना चाहिये। इस शर्त में किसी बड़े लम्बे उत्तर की आवश्यकता नहीं है। मैंने यह कहा ही है कि, सप्तक के १ स्वरों की पंक्ति में से ५ स्वरों के विकृत स्वरूप भी होते हैं। यह स्वर रे, ग, म, ध, नी हैं। इनमें से रे, ग, ध, नी, कभी-कभी कोमल और 'म' तीव्र होता है। जिस शर्त की हम अभी चर्चा कर रहे हैं, उसमें यह कहा गया है कि एक स्वर के दोनों रूप एक के बाद दूसरा तुरन्त नहीं आना चाहिये। इस प्रकार दोनों 'र' तीव्र और कोमल, दोनों 'ग' कोमल और तीव्र इत्यादि एक के बाद दूसरा नहीं आ सकता। यह केवल शास्त्रीय नियम ही नहीं है।

बताई हुई रीति से इन वर्ज्य स्वरों को गाना एक कठिन कार्य होगा। यदि यह समुदाय सफलता पूर्वक गाया भी गया तो यह बहुत असांगीतिक मालूम होगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस नियम के कुछ अपवाद हैं (केदार, पूर्वी, ललित इत्यादि गाना), परन्तु अपवाद नियम को सिद्ध ही करता है।

अगली शर्त जो राग को पूरी करनी चाहिये वह यह है—राग में एक निश्चित वादी स्वर अवश्य होना चाहिये। यह सचमुच ही एक अत्यन्तावश्यक शर्त है। मैं यह कह सकता हूँ कि यह शर्त हिन्दुस्तानी-सङ्गीत पद्धति की एक अनोखी विशेषता है। किसी राग में वादी स्वर के दो कार्य होते हैं :—

स्वराश्चतुर्विधा ज्ञेया रागोत्पादन-गोचराः।
वादी संवाद्यनुवादी विवादी च चतुर्विधाः॥
वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मंत्री संवादिसंज्ञितः।
स्वरो विवादी वैरी स्यादनुवादो न मृत्यवत्॥

अनुवाद—राग का निर्धारण करनेवाले चार प्रकार के स्वर होते हैं। वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी। वादी स्वर राग का राजा या प्रमुख स्वर होता है।

सम्वादी राजा का मंत्री या वादी स्वर के बाद दूसरा महत्व का स्वर होता है। विवादी स्वर राग का शत्रु होता है। इससे विरोध उत्पन्न होता है। यहाँ पर प्रश्न उठेगा कि क्या वादी स्वर राग में प्रयुक्त भी होता है ? यदि ऐसा है तो क्यों और कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर संस्कृत ग्रन्थकार यों देते हैं :—

प्रयोगो बहुधा यस्य स सस्याद्वादी नृपोपमः।
ययोर्मवेयुः श्रुतयो द्वादशाष्टाथवान्तरे ॥
मिथः संवादिनौ तौस्तो राज्ञः सचिव-संनिभौ।
विवादी रक्ति-विच्छेदी शत्रु-तुल्यः स कीर्तितः ॥
अनुवादी तटस्थोयः किंकरप्रतिमः स्वरः।
यो यद्रागे प्रधानः स्यात् स्वरोऽशः कीर्त्यते जने ॥

मेरे पूछे हुए प्रश्न का उत्तर अब आता है :—

विवादी विपरीतत्वाद्वीरैरुक्तो रिपूपमः।
स्वरूप-मर्दनं तेन प्रयोगे स्याद्विवादिना ॥
स्वरूप-मर्दनाभावे गीते रक्तिर्न लभ्यते।
शत्रूपमर्दने हि स्याद्राज्ञां लोके प्रकाशनम्।
सुप्रमाणयुतो रागे विवादी रक्ति-वर्धकः।
यथेषत्कृष्ण-वर्णेन शत्रुस्यातिविचित्रता ॥
प्रतिरागं भवेद्वादी सर्व-रक्ति-प्रदायकः।
निर्णायको राग-नाम्नः समयस्यापि सूचकः ॥

वादी स्वर के दो कार्य होते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह राग के नाम और उसके गाने के समय को भी निश्चित करता है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है वादी स्वर का यह दुहरा कर्तव्य दक्षिणी या सचमुच देश की किसी अन्य संगीत पद्धति में पूर्णतः मान्य नहीं होता। इस स्वर के दुहरे कर्तव्य को और भलीभाँति समझाने के लिये मैं सोच रहा हूँ कि ऊपर चर्चा किये हुए समय-सिद्धान्त को संक्षेप में आपको समझाना होगा। पिछली कई शताब्दियों में संगीत में अनेकों परिवर्तन हुए हैं, परन्तु बताये हुए रागों के गाने का समय निश्चित करने का सिद्धान्त सदैव मान्य रहा है। मैं यह मानता हूँ कि रागों के निश्चित किये हुये प्राचीन समय अब नहीं अपनाये जाते, परन्तु किसी राग को निश्चित समय देने का सिद्धान्त अभी भी चल रहा है। गायक को, गाये जाने वाले रागों के समय जानना चाहिये। अपने प्राचीन ग्रन्थकार कहते हैं—यथा काले सभारब्धं गीतं भवति रंजकम्। परन्तु वे एक छूट देते हैं—"दश दंडात्परं रात्रौ कालदोषो न विद्यते ॥"

हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों ने जिस तर्क पर अपने समय-सिद्धान्त को आधारित किया है, वह निम्न श्लोकों में थोड़े में इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—

पूर्व-रागास्तथोत्तर-रागा जाताः संमततः।
सर्वेभ्य एव मेलेभ्य इति लक्ष्य-विदां मतम् ॥

रागा उत्तर-पूर्वास्ते भवेयुः प्रति-मूर्तयः ।
स्व-स्व-पूर्वाद्य-रागाणामिति मर्म-विदो विदुः ।
रात्रि-गेयास्तथा दिन-गेया रागा व्यवस्थिताः ।
मध्यमेनानुरूपेण यतोऽसावध्वदर्शकः ॥
स्वर विकृत्यधीनाः स्युस्तयो वर्गा व्यवस्थिताः ।
रागाणामिह मर्मज्ञैरानि सौकर्म हेतवे ॥
रिगधतीव्रका रागा वर्गेऽग्रिमे व्यवस्थिताः ।
संधिप्रकाश-नामानः क्षिप्ता वर्गे द्वितीयके ॥
तृतीये निहिताः सर्वा गनिकोमलमंडिताः ।
व्यवस्थेयं समीचीना गान-काल-विनिर्णये ॥
प्रातगेयास्तथा सायंगेया रागाः समंततः ।
संधि-प्रकाश-वर्गःस्युरिति सर्वं संमतम् ॥
ततः परं समादिष्टं गानं लक्ष्यानुसारतः ।
रिगधतीव्रकाणां वै रागाणां भूरिरक्तिदम् ॥
गनि-कोमल-संपन्ना रागा गीता विशेषतः ।
मध्याह्ने च तथा मध्य-रात्रे संगीतविन्मते ॥

इन श्लोकों के तर्कों की पुष्टि के लिए संगीत-कल्पद्रुम का निम्नलिखित अंश उपयोगी होगा :—

प्रात समै में गाइए भैरव प्रथम सुराग ।
ललित भैरवी रामकली खटगुन करि अनुराग ॥
देशकार विभास पुनि भटियारी भंखार ।
बसंत बहार पंचम हिंदोली हिलार ॥
बेलावली अल्हायिका सरपरदा कुकूभ ।
देवगिरी शुक्ला शुभा प्रहर चढ़े दिन धूप ॥
लच्छाशाखभूशाख पुनि रामशाख देशाख ।
सुहा सुधरई सुही शुभा देव गंधारी भाख ॥
डेढ़ प्रहर दिन चढ़त ही टोड़ी गुर्जरी गान ।
देशी आसावरी जौनपुरी टोड़ि बरारी जान ॥
सारंग सुध बिंदाबनी बडहंसी सामंत ।
लंकदहन सुम लूहरी दो पहेर मेवन्त ॥
मेघ मलारी गौड पुनि गौडगिरी जलधार ।
नट मल्लारी सूर पुनि रामदासि मल्लार ॥
मुलतानी अरु धनासिरी भीमपलासी जान ।
बरवा धानी अहीरिका तृतिय पहर कर गान ॥

जंगला मंगल पीलु पुनि सिंधु तिलंगप्रदीप ।
दीपक दीपकि काफि पुनि चौथे पहर भरतीप ।।

जेतश्री श्री मालसिरी मालश्री गौराह ।
गौडसारंग अरु मारवा पूर्वी अरु पूर्वाह ।।

त्रिवेणी श्री गौरी बहुरी चेती टंकी मान ।
चौथे प्रहर दिन अन्त में श्रीटंकीकर गान ।।

प्रथम जाम रजनी समे कल्याणी सुध गान ।
हेम खेम ऐमन पुनि श्याम हमीर हि जान ।।

जेत भूपाली पूरिया कामोदी कर गान ।
प्रहर रजनि जाते गुनी छायानाट बखान ।।

डेढ़ प्रहर निसके समय नायकि बख्त प्रमान ।
अष्टादश है कानरा कौशिक कानर जान ।।

अडाना शहाना शोभना सोहन सोहनी मान ।
केदारा मलुहा पुनि नाट केदार बखान ।।

बिहंग बिहारी बिहागरा बिहांग पुनि विनोद ।
भरन अरन संकीर्ण अरु शंकरा आमोद ।।

सोरट देस सौराष्ट्रिका सिंदूरा साबेरी ।
परज खंबावती सुखावती कालिंगरा आभेरी ।।

भालकौंश और कौशिकी कुसुमकास कर्णाटि ।
ललित कलिंग लिलावती अरुणोदय में बांटि ।।

सोले-सहस्त्र और आठ सौ राग रागिनी जान ।
वृन्दावन हरि रास में गोपिन किए हैं गान ।।

देश देश के भेद में भिन्न भिन्न है नाम ।
मारग ब्रह्मादिक कहे देशी दशहूं धाम ।।

कल्पद्रुम लगभग तीन पीढ़ी पहले छपा था । इस बड़े अन्तराल में संगीत में अनेकों परिवर्तन हुए होंगे । परन्तु यहाँ आप पूछेंगे कि वादी स्वर के महत्व के बारे में क्या हुआ? आपका प्रश्न बिलकुल उचित है । इन लम्बे उद्धरणों से वादी स्वर के महत्व के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं होता । अब मैं आपको यह बताऊंगा कि किस प्रकार इन उद्धरणों की विषय सामग्री से वादी-स्वर का सम्बन्ध है । मेरे विचार से मैंने यह कहा ही है कि प्रथम श्रेणी के संगीत-विशेषज्ञ २०० रागों से अधिक नहीं गाते । बहुमत इस संख्या से कम को ही गाता है । इन रागों के मुख्य दो वर्ग किये गये हैं—(१) वह, जो पूर्व राग कहलाते हैं या जिनके गाने का समय दोपहर से मध्यरात्रि के बीच ठीक है और (२) उत्तर-राग या वह राग जिनके गाने का समय मध्यरात्रि से दोपहर के बीच ठीक है ।

अब यह देखा जायगा कि प्रथम भाग (पूर्व-राग) में पड़नेवाले रागों में वादी स्वर निश्चय ही सा, रे, ग, म, इन स्वरों में से कोई एक होगा और दूसरा भाग (उत्तर-राग) में आनेवाले रागों में वादी स्वर म, प, ध, नी, सां इन स्वरों में से कोई एक होगा। इस उद्देश्य के लिए सम्पूर्ण सप्तक दो "अंग" यानी पूर्वांग और उत्तरांग से बना हुआ समझा जाता है। पूर्वांग का क्षेत्र 'सा' से 'प' तक है और उत्तरांग का 'म' से 'सां' तक। अन्य शब्दों में पूर्व रागों में वादी स्वर पूर्वांग में आयेगा और उत्तर रागों में वादी स्वर सदैव उत्तरांग में आवेगा। इससे आप देखेंगे कि वादी स्वर के सही स्थित करने से आप यह निश्चित कर सकेंगे कि कोई अमुक राग दोपहर और मध्यरात्रि के बीच में गाया जावेगा या मध्यरात्रि व दोपहर के बीच में। परन्तु यहाँ आप कहेंगे कि यह सूचना पर्याप्त नहीं है। यह पूछा जायगा कि पूर्वरागों के समय आपस में किस प्रकार निश्चित किये जा सकते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर के लिये मैं आपको संस्कृत उद्धरणों को पुनः देखने के लिये कहूँगा :—

रिगधतीव्रका रागा वर्गेऽग्रिमे व्यवस्थितः।
संधि-प्रकाशनामानः क्षिप्ता वर्गे द्वितीयके॥
तृतीये निहिताः सर्वे गनिकोमल-मंडिताः।

सभी राग स्थूल रूप से (चाहे पूर्व हो या उत्तर राग) तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किये गये हैं :—

(१) जिनमें 'रे' 'ग' और 'ध' तीव्र लगता है।

(२) जिनमें 'रे' कोमल और 'ग' और 'नी' तीव्र लिये जाते हैं।

(३) जिनमें 'ग' और 'नी' कोमल लिये जाते हैं।

दूसरे वर्ग में आनेवाले राग सायं ४ बजे से ७ बजे तक और प्रातः ४ बजे से ७ बजे तक गाये जाते हैं। पूर्व राग शाम को और उत्तर राग सुबह गाये जावेंगे। यह राग संधि-प्रकाश राग कहलाते हैं। पहले वर्ग में आने वाले राग अर्थात् वह राग जिनमें रे ग और ध तीव्र लिया जाता है, संध्या ७ बजे से मध्यरात्रि तक एवं सुबह ७ बजे से दोपहर तक गाये जाते हैं। तीसरे वर्ग में आनेवाले राग जिनमें ग ध नी कोमल लगता है, पहले और दूसरे वर्ग के रागों के बीच में आते हैं।

इस प्रकार आप देखेंगे कि वादी स्वर यह निश्चित करेगा कि कोई राग-पूर्व है या उत्तर-राग और मेरे द्वारा अभी हाल बताये हुये तीन वर्गों की सहायता से स्वरों का परीक्षण कर यह निश्चित होगा कि कोई राग दिन या रात्रि के किस प्रहर में गाने के लिये ठीक है। यहाँ एक और विषय भी है जो रागों के निर्धारण में सहायक होगा। बहुत से राग जिनके निर्माण में तीव्र म लिया जाता है, सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच के समय के लिये निश्चित किये जाते हैं। इसलिये मध्यम स्वर को 'अध्वदर्शक स्वर' या मार्गदर्शक स्वर की तरह देखा जाता है।

व्यंकटमुखी के निम्न श्लोकों में राग के चरित्र को परिवर्तित करने में मध्यम स्वर के महत्व के विषय में कहा गया है :—

कटाह-संभृतं क्षीरं केवलं दधि-बिंदुना ।
यथा संयोज्यमानं तु दधिभावं प्रपद्यते ।।
तथैव पूर्व-मेलास्ते मध्यमेनाभिसंज्ञिताः ।
केवलेनापि संयुक्ता भजंत्युत्तर-मेलताम् ।।

पूर्वी और भैरव एवं कल्याण और बिलावल इस विषय पर अच्छे उदाहरण हो सकते हैं ?

यहाँ पर मैं यह कह दूँ कि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अपनी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में ऊपर निर्दिष्ट शर्तों को पूर्ण करने वाले और जन्य-मेलों की तरह समझे जा सकने वाले स्वर-सप्तकों की परिभाषा की जाती है, विभिन्न थाटों या मेलों में अब गाये जानेवाले प्रचलित विभिन्न रागों का वर्गीकरण और बँटवारा किया जाता है, और इस प्रकार के वर्गीकरण के लिये संतोषप्रद सिद्धान्त बनाये जाते हैं, एक ही थाट में आनेवाले विभिन्न रागों की भिन्न करनेवाली विशेषताओं का सही निर्धारण होता है, दिन के समय का निर्धारण एवं निश्चय, प्रत्येक राग की पकड़ एवं अन्य विशेषताएँ जिससे कि विद्यार्थी को एक झलक ही नहीं अपितु संगीत क्षेत्र का एक पूरा नक्शा प्राप्त हो सके, निश्चय किया जाता है। मैंने स्वर, श्रुति, राग, थाट और वादी स्वर के गाने में प्रयोग के अनुसार रागों के दिन या रात्रि के समय निर्धारण के महत्वपूर्ण प्रश्न पर भी चर्चा की है। अतः मैं अब रागों के विभिन्न मेल या थाटों के वर्गीकरण के प्रश्न पर और एक ही अन्यमेल में आनेवाले विभिन्न रागों की भिन्न करनेवाली विशेषताओं पर भी आऊँगा।

सब राग जिन्हें हम आजकल गाते हैं, निम्न १० थाटों में बाँटे जा सकते हैं— यमन, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोड़ी। वर्गीकरण का सिद्धान्त ग्रहण करने में राग और उसके मेल की समानता का विचार होगा। इस प्रकार उदाहरणार्थ—हमीर, केदार, कामोद, श्याम इत्यादि राग और मिलते हुए राग जिनमें यमन थाट से निश्चित सम्बन्ध दिखाई पड़ता है, उस थाट में रखे जावेंगे। इसी प्रकार श्री, जैतश्री, टंकी, पूरियाधनाश्री, मालश्री, गौरी इत्यादि पूर्वी थाट में रखे जावेंगे; जबकि कालिंगड़ा, गुणश्री, जोगी, रामकली इत्यादि भैरव थाट में रखे जावेंगे। कल्पद्रुमांकुर के निम्नलिखित श्लोकों में सम्पूर्ण वर्गीकरण कुशलता एवं संक्षिप्त रूप से वर्णित हुआ है। एक ही मेल में आने वाले विभिन्न रागों का भेद प्रत्येक राग की सुस्पष्ट परिभाषा में उसकी आवश्यक बातें निश्चित कर स्पष्ट किया गया है। जैसे कि (१) राग औडव, षाडव, या सम्पूर्ण है, (२) उसके गाने का उपयुक्त समय क्या है, (३) उसमें कौन-से स्वर नहीं लगते और उस अवस्था में वह आरोह में या अवरोह में छोड़े गये हैं, (४) राग का वादी या प्रमुख स्वर और उसका सम्वादी क्या है, (५) राग के विस्तार में अनुवादी स्वरों का उपयोग किस प्रकार होना है, (६) राग की सुन्दरता पूर्वांग में है या उत्तरांग में अर्थात् ऊपरी अर्धसप्तक के मन्द्र में और फिर आरोह में या अवरोह में, (७) रागों के गाने में कौन-सी त्रुटियाँ नहीं करनी चाहिये,

(८) समप्रकृतिके रागों का सूक्ष्म भेद जैसे, श्री और गौरी, जैतश्री और पूरियाधनाश्री, आसावरी और जौनपुरी, देसी और देवगन्धार, त्रिवेणी और टंकी, मारवा और पूरिया, भटियार और भंखार, भैरव और रामकली, भीमपलासी और धनाश्री, काफी और सिंदूरा, बिहाग और शंकरा, देस और सोरठ इत्यादि। इसके अतिरिक्त रागों के प्रस्तार के सम्बन्ध में ग्रह, अंश, न्यास और विश्रान्ति स्थान या रुकने की जगह और पकड़ अर्थात् स्वरों का वह विशिष्ट समूह जिसके गाने से ही राग चित्रित हो जाय जैसे नी सारे ग, मग, पूर्वी व्यक्त करने के लिये या पूरिया की सूचना देने के लिये सा, नी ध् नी, इत्यादि के सम्बन्ध में सामान्य निर्देशन देना चाहिये। आधारभूत सिद्धान्त शुद्धता होने के कारण आजकल गाये जानेवाले रागों को लिखना एवं उनकी सही-सही, निश्चित और पूर्ण परिभाषा करना चाहिये। अभी तक वह सिद्धान्त जिनसे कि वर्गीकरण किया जायगा बताने के बाद मैं अपनी बातें दो या तीन थाट और उनमें उत्पन्न रागों को लेकर दृष्टांत सहित स्पष्ट करूँगा। प्रारम्भ करने के लिये हमें कल्याण थाट लेना चाहिये।

इस थाट से उत्पन्न होने वाले राग इस प्रकार वर्गीकृत होंगे :—

भूपाली शुद्धकल्याणश्चंद्रकांतो जयंतकः।
अस्मिन् वर्गे निधीयंते लक्ष्य लक्षण कोविदैः॥

यह राग या तो मध्यम पूरी तरह छोड़ते हैं या इसे आरोह में छोड़ते हैं :—

मालश्रीरिमनाख्यातो हिंडोलो लोक-विश्रुतः।
एक-मध्यम-संपन्ना भवेयुर्धीमतां मते॥

यह राग केवल एक तीव्र मध्यम लेते हैं :—

छायानाट-हमीराह्व-श्यामकामोद-नामकाः।
केदारो गौडसारंगो द्विमध्यम-विभूषिताः॥

दो मध्यम लगने वाले रागों का और भी साधारणीकरण निम्न नियम से हुआ है :—

द्विमध्यमेषु रागेषु नियमो गुणि-संमतः।
प्रारोहे स्यान्निवक्रत्वं गवक्रं चावरोहणे।
सनिधपा मपधपा गमौ रिसावरोहणम्।
अनुलोमे प्रधानांगं रागरूपं प्रदर्शयेत्॥

दोनों मध्यम लगनेवाले रागों के प्रधान अंग यह हैं—ग म ध, सा म, म प, प; रे ग म प, ग म, रे सा; म रे, नि सा; रे प, ग म प, ग म रे सा; सा रे सा, ग रे, म ग। इन सभी रागों में वक्र ग से अवरोह किया जाता है। अमध्यम और एक मध्यम वालों को अलग रखनेवाली विशेषताएँ यह हैं (गाकर) :—

भूपाल्यां तु मनी नस्तः शुद्धाख्ये रोहणे न तौ।
भूपाली-तुल्यको जैत्रः पंचमांशो मिदांभजेत्॥

आरोहस्थे मरित्कः स्याच्चंद्रकांताभियोजते ।
शुद्धकल्याण-सादृश्यं दधन् रक्ति-प्रदो निशि ।।
इमनः स्यात् सदा पूर्णो, मालश्रीररिधा ततः ।
हिंदोले रिपहीनत्वं प्राबल्यमुत्तरांगके ।।
द्विमध्यमेषु रागेषु नियमो गुणिसंमतः ।
आरोहे स्यान्निवक्रत्वं गवक्रं चावरोहणे ।।
सनी धपौ मपधपा गमौ रिसावरोहणम् ।
अनुलोमे मध्यमांगं रागरूपं प्रदर्शयेत् ।।

यदि रे, ग, म, प, ध, नी, सां का सप्तक दो भागों में बाँटा जाय तो सा, रे, ग, म, स्वर पूर्वांग में होंगे और प, ध, नी, सां स्वर उत्तरांग में । व्यवहार में पूर्वांग का क्षेत्र सा, रे, ग, म, प, तक और उत्तरांग में म, प, ध, नी, सां है । निम्नलिखित लक्षणगीत में पूर्वांगवादी राग और उत्तरांग-वादी रागों का वर्गीकरण और भी स्पष्ट हुआ है ।

प्रथम कल्याणि ठाठ । जनक साच मानिए । मध्यमते बरगित कर । सबहु जन्य जानिए ।
भूपजेत सुध कल्याण । चन्द्रकांत मालसिरी । इमन प्रेख अम एकम । अहनिस पहचानिये ।
छायानाट हमीर स्याम । कौमुदी केदार जान । गौडकसारंग गुनियत । मध्यम जुग मानिये ।
बादि होत पूर्व अंग । पूर्व राग उत्तरांग । उत्तराल्य राग नियम । चतुर याको जानिये ।

इनमें से प्रत्येक रागों की पकड़ जिसमें स्वरों की एक योजना है, अनुष्टुभ दोहे में स्पष्ट रूप से दी गई है :—

गरी निरी सगौ रिगौ पमौ गरी परी च सः ।
इतीमनो भवेदगांशो रात्र्यां प्रथम-यामके ।।
गरी सधौ सरी गश्च पगौ धपौ गरी च सः ।
भूपाली कथ्यते लोके मनिहीना च गांधिका ।।

अब मैं कुछ लक्षण-गीत गाऊंगा और यह दिखाऊँगा कि किस प्रकार एक-एक राग के नियम अत्यंत सरलता एवं सुगमता से स्मरण किये जा सकते हैं ।

अब हम एक और थाट खमाज और उसके जनक राग लेंगे । मैंने ऐसा थाट लिया है जिससे उत्पन्न होने वाले राग आप सरलता से समझ सकेंगे । इस थाट के अन्तर्गत निम्न राग आवेंगे :—

खंमाजश्चापि झिंझूटी सोरटी देस नामकः ।
खंबावती तथा दुर्गा रागेश्वरी तिलंगिका ।।

जयावंती तथा गारा कामोदस्तिलकादयः ।
एकादश मता एते खंमाजाभिध-मेलने ।।

यह ११ राग इनके वादी स्वरों के अनुसार दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। वादी भेदे राग भेदः यह हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों का सर्व विदित सिद्धान्त है। केवल वादी स्वर के भेद से स्वरों की एक ही पंक्ति से विभिन्न स्वर उत्पन्न होंगे। उदाहरण के लिये, हम निम्न-लिखित क्रमानुसार स्वर सा, रे, ग, प, ध, सां, लेकर इसके वादी स्वर को बदल देंगे। (इस रीति द्वारा गाना और विभिन्न राग दिखाना) लेकिन हमें खमाज थाट के रागों की ओर लौटना है। ग्यारह रागों के इस प्रकार के समुदाय बनेंगे—(१) खमाज, तिलंग, खंबावती, दुर्गा, रागेश्वरी, झिंझोटी और गारा; (२) देश, सोरठ, तिलककामोद और जैजैवन्ती। इनमें अन्तिम पर-मेल-प्रवेशक राग है अर्थात् वह राग जो गायक को खमाज थाट के रागों से काफी थाट में ले जाता है। पहिले समूह के रागों का वादी स्वर गान्धार और दूसरे समूह के रागों का वादी स्वर रिषभ है। इस प्रकार :—

खंमाजी-मेलजा रागा विभज्यंते द्विधा बुधैः ।
अंशस्वरानुरोधेन रहस्यं बहुविश्रुतम् ।।
खंमाजो झिंझुटी दुर्गा खंबावती तिलंगिका ।
रागेश्वरी तथा गारा गांधार-वादिनः ।।
सोरटी देशकाख्यातो जयावन्ती गुणिप्रिया ।
तिलकादिक-कामोद एते रागा रिवादिनः ।।
—अभिनवरागमंजर्य्याम्

इनको दो वर्गों में बाँटने के बाद इन्हें अलग करने के लिये आगे बढ़ते हैं :—

अनुलोमे विलोमे च संपूर्णा झिंझुटी मता ।
आरोहे रिस्वरत्यक्ता खंमाजो लोक-विश्रुतः ।।
रिपत्यक्ताऽपरा दुर्गा तैलंगी स्याद्विधोज्झिता ।
रागेश्वरी स्वयं दुर्गाऽवरोह ऋषभान्विता ।।
खंमाज-नियमभ्रष्टा खंबावती समीरिता ।
मंद्र-मध्यस्थगा गारा झिंझूट्यंगपरिष्कृता ।।
सोरटी त्वधगारोहा, देसः संपूर्ण ईरितः ।
जयावन्ती द्विगांधारा परिसंगमनोहरा ।।
विहंगदेस-संचारी कामोदस्तिलकादिकः ।
अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म ब्रुवे लक्ष्यज्ञ-संमतम् ।।
—मंजर्याम्

झिंझौटी एक संपूर्ण राग है : पकड़—ध सा रे म ग ।
खमाज के आरोह में रे छोड़ते हैं : पकड़—नी ध, ग म ग ।

तिलंग में रे व ध छोड़ते हैं : पकड़—नी प, ग म ग ।
दुर्गा में रे व प छोड़ते हैं : पकड़—सा नि ध नी सा म ग म ध नी ध, म ग ।
रागेश्वरी में आरोह में रे व प छोड़ते हैं
और अवरोह में रे लेते हैं : पकड़—सानि धनी सा म ग म ग रे सा ।

खंबावती में आरोह में रे लगता है : पकड़—सा रे म प ध सां नी ध म ग रे सा गारा सम्पूर्ण है, पर दोनों ग लगते है : पकड़—रे ग रे सा नी प ध नी सी । (सभा में प्रदर्शन, लक्षण गीत)

अब हम एक और थाट यानी पूर्वी लेंगे । इस थाट से १० प्रसिद्ध राग निकलते हैं :— पूर्वी, पूरियाधनाश्री, श्री, गौरी, मालश्री, त्रिवेणी, जैतश्री, टंकी, वसंत और परज ।

इन रागों को एक दूसरे से अलग निम्न प्रकार से पहिचाना जा सकता है :—

संपूर्णा च द्विमा पूर्वी, मध्यमाल्पा तु टंकिका ।
श्रीरागो ह्यधगो रोहे, त्रिवेणी मस्वरोज्झिता ।।
कलिंगांगा भवेद्गौरी, जेताश्रीररिधा मता ।
माली त्वनिरारोहेऽवरोहेऽपि धदुर्बला ।।
धनाश्रीः पूरियाद्यासौ पूर्व्यंगा चैक-मध्यमा ।
द्विमध्यमा तथा तारषड्जचित्रा वसंतिका ।।
अपारोह-मगावृत्ता भवेद्रक्तिप्रदा निशि ।
परजाव्हा भवेत् पूर्णा द्विमोत्तरांग-शोभना ।।

(लक्षणगीतों द्वारा स्पष्टीकरण एवं प्रदर्शन ।)

पूर्वी में दोनों मध्यम लगते हैं और इस प्रकार पूरियाधनाश्री से अलग होती है । उत्तरी गायक पूर्वी में दोनों धैवत लेते हैं—आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल । इससे श्रोताओं के मन में कोई शंका नहीं रहेगी । इन दोनों रागों की पकड़ें जिनसे हम इन्हें अलग पहिचान सकते हैं, यह है :—

नि, सा रे ग, म ग, (पूर्वी) और नि रे ग मं प, मं रे ग, नि रे सा (पूरियाधनाश्री) । श्री राग में आरोह में ग और ध छोड़ते हैं । सा रे रे सा यह एक विचित्र स्वर समुदाय है, जो ध्यान आकर्षित करता है । त्रिवेणी में कोई मध्यम नहीं लगता और इस कारण पृथक हो जाता है ।

श्रीटंकी त्रिवेणी की तरह है परन्तु इसमें अवरोह में मं लगता है । जैतश्री में आरोह में रे और धं छोड़ते हैं । मालवी में आरोह में नी छोड़ते हैं । गौरी कालिंगडा की तरह गाई जाती है और इसलिए इसे दोनों मध्यम लगने वाला दोपहर का कालिंगड़ा कहते हैं । यह सब सायंकाल के राग हैं । अन्तिम दो परज और बसंत, प्रातःकाल के राग हैं । ये दोनों ही उत्तरांग प्रधान राग हैं । वसंत में मुक्त मध्यम है और मं ग दुहराया जाता और आरोह में प छोड़ा जाता है । रे नी ध प की सावकाश मींड ही भेद स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है । परज में ऊपर बताई हुई सभी बातें नहीं होतीं ।

अब हम मारवा थाट के रागों का विचार करेंगे। यह संख्या में १२ हैं और दो समूहों में बाँटे जाते हैं।

(१) पूरिया, मारवा, जैत, गौरा, साजगिरी, बराड़ी।
(२) ललित, पंचम, भटियार, भंखार, सोहनी, विभास।

प्रथम समूह में आनेवाले सभी राग संध्याकाल के हैं और उस कारण पूर्वांग प्रधान हैं। दूसरे समूह में आनेवाले, प्रातःकालीन राग हैं और उत्तरांग प्रधान हैं। यह कहा गया है :—

भारवा मेलनोत्थास्ते रागा द्वादश विश्रुताः ॥
सायंगेया भवेयुः षट् प्रातर्गेयास्तथैव च ॥
पूरिया मारवा जेता गौरा साजगिरी तथा।
बराटी-सहिता एते सायं-गेया मता बुधैः ॥
ललितः पंचमश्चैव भट्टियारो विभासकः।
भखवारः सोहनी ख्याताः प्रातर्गेया विदां मते ॥

उन रागों को पृथक करने वाली सभी विशेषताएँ स्पष्ट रूप से निम्नलिखित में कही गई हैं :—

अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म ब्रूमो लक्ष्यानुसारतः।
पूरिया मारवा रागावपौ संगीतविन्मते ॥
सायं-गेया सदा पूर्या पूर्वांग प्रबला मता।
सत्युत्तरांग-प्राबल्ये सोहन्यंगं प्रदर्शयेत् ॥
हिंदोलांगयुता मार्वा रिध-संवाद-मंडिता
गनि-संवाद-पूर्यार्या अवश्यं भेदमादिशेत् ॥
साजगिरी मता लक्ष्ये द्विधा द्विमा मनीषिभिः।
प्रतिमूर्ति विभासस्य सायंगेया बराटिका ॥
द्विधैवतस्तथा द्विऋषभो जैगे भवेत् पृथक्।
कल्याणी-मेलजो लक्ष्ये जयत्कल्याणको मतः ॥

प्रातःकालीन राग

ललितः पंचमश्चैव परिक्तौ संमतौ जने।
द्विमध्यमयुतौ तौस्तो निशीथे भूरिरिक्तिदौ ॥
ललितांगं स्वतंत्रं तदवश्यं भेद-दर्शकम्।
हिंदोलांगसमापन्नः पंचमो द्वंद्वमध्यमः ॥
सोहन्यां पचमाभावो धगसंगत्यभीष्टदा।
सपाः पंचम-भखवार-भट्टियार-विभासकाः ॥

पंचमो ललितांगः स्याद् भल्वारस्तद्भावतः।
भट्टियारस्तु संपूर्णो मध्यमांशो मते विदाम् ॥
विभासाख्यः सुसंपूर्णो गपसंगति-शोभनः।
मनिदौर्बल्यतोऽवश्यं प्रातः स्यादतिरक्तिदः ॥
—अभिनवराग-मंजर्याम्

स्पष्टीकरण

पंचम के अभाव द्वारा पूरिया, मारवा, सोहनी और एक प्रकार का पंचम पृथक किया जाता है। प्रथम दो सायंकाल के राग हैं और अन्तिम दो प्रातःकाल के। पूरिया में गान्धार वादी है और मारवा में रे वादी है। इन रागों की पकड़ इस प्रकार है—सा, नी ध नी, मं ग, मं ध रे सा, ध मं ग रे, ग मं ग रे सा। सोहनी पूरिया का प्रतिरूप है। यह मध्य और तार स्थानों में गाई जाती है। पंचम में दोनों मध्यम लगते हैं और हिन्दोल अंग दिखाई देता है।

देवियों और सज्जनों! मैं अब आपको अन्य रागों की पृथक करनेवाली विशेषताओं के वर्णन देकर परेशान नहीं करना चाहता। इस विषय की विभिन्न पुस्तकों में यह पर्याप्त रूप से दिये गये हैं और मैंने इन पुस्तकों से उद्धरण दिये हैं एवं आपको सन्तुष्ट करने के लिये कि इस विषय पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, मौखिक प्रदर्शन भी किये हैं। एक शुद्धमति का विद्यार्थी यदि इनका लाभ उठाना चाहे तो हिन्दुस्तानी सङ्गीत के १०० या १५० रागों का स्पष्ट, परिभाषित, निश्चित और विशद वर्णन प्राप्त हो सकता है और वह विश्वास के साथ गा सकता है। यदि वह विभिन्न रागों के लिये निश्चित किये गये विभिन्न नियमों का ध्यानपूर्वक पालन करे तो राग-भंग भी नहीं होगा। जैसा कि मैंने ऊपर कहा ही है, सारी पद्धति का उद्देश्य शुद्धता ही है और जिस पद्धति का चित्रण मैंने अभी या इस भाषण में किया है वह एक विश्लेषणात्मक आधार पर और आधुनिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में पर्याप्त अनुसंधान के बाद बनाई गई है।

जब हिन्दुस्तानी संगीत का विधिवत् अध्ययन करने को कहा जाता है तो हम लोगों को प्रश्न करते देखते हैं कि पाठ्यपुस्तकें कहाँ हैं? पद्धति कहाँ है? किस प्रकार और कैसे अध्ययन किया जावे? मैंने आपको विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया है कि एक सच्चे विद्यार्थी के लिये जो संगीत कला प्राप्त करना चाहता है, उपलब्ध सामग्री का कोई अभाव नहीं है। पिछले १५ या २० वर्षों में लोगों में गुरुपरंपरा प्रणाली को छोड़ने की इच्छा जाग्रत हुई जिसमें कि, विद्यार्थी को इधर-उधर के कुछ राग उठा सकने और अपने को एक खाँ साहब का शागिर्द घोषित कर सकने में, भाग्यशाली समझने के पहले, वर्षों परिश्रम करना और उस्ताद की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। शागिर्द के गायन का बहुत कुछ अंश उसकी स्वयं की कल्पना और अपने तथाकथित गुरु या दूसरों से घटनावश उठाया हुआ गायन रहता है। गुरु, पिता होता है जो समय आने पर अपने चेले को मानने के लिये तैयार रहता है। इन तरीकों से लोग सन्तुष्ट नहीं हैं। इन पुराने तरीकों में सामूहिक शिक्षा भी सम्भव नहीं है और इसमें नष्ट हुआ मूल्यवान समय भी अक्षम्य है। अपने लेखक

अब सजग हो गये हैं और वे संगीत को इच्छुक व्यक्तियों की पहुंच में करना चाहते हैं। अतः जिस बात की आवश्यकता है, वह है इस विषय के महत्व के प्रति सामान्य जागरूकता जो तभी सम्भव होगी जब लोग संगीत को प्रत्येक स्कूल में अनिवार्य शिक्षा का विषय बनाने की मांग एक स्वर से उठावेंगे। यह ठीक है कि सम्पूर्ण देश में संगीत विद्यालय हैं। परन्तु अभी प्रयत्नों में एकीकरण नहीं है। कोई स्तरीय एक पद्धति नहीं मानी जाती और सम्भवतः विषय के यथासम्भव प्रचार से अधिक व्यक्तिगत लाभ ही ध्येय बना हुआ है। हम यह जानते हैं कि बीते-दिनों में अपने संगीत को राज्याश्रय प्राप्त था। सफलता की कुछ आशा से केवल शासकीय शक्ति ही संगीत को उचित और स्थाई आधार प्रदान कर सकती है और संगीत का उद्धार तभी पूर्ण होगा जब मंत्रियों, अपने कुलपतियों, उपकुलपतियों या अपने प्रधानाचार्यों और कौंसिल और असेम्बली के अपने प्रतिनिधियों का सम्पूर्ण हृदय से अनुमोदन प्राप्त हो और वे यह मानते हों कि संगीत का प्रश्न राज्यकर सम्बन्धी स्वराज्य या चुंगी की नीति से अधिक गम्भीर और अधिक परिणामकारी है। एवं लोगों को संगीत प्रदान करने में वे उन्हें जीवन प्रदान करेंगे जबकि स्वतंत्र-व्यापार या आश्रय देने में वे उन्हें केवल पोषित ही करेंगे। संगीत डाक्टरों के बिल को कम करेगा और स्नायुओं के विश्राम एवं मानसिक चिन्ता और थकान से मुक्त कर संसार में वह शान्ति और सन्तोष लावेगा जो विज्ञान भी प्रदान नहीं कर सकता। हमारा राष्ट्र स्वस्थ और सम्पुष्ट होगा।

मुझे आनन्द होगा यदि मैं यह मंच इस विश्वास के साथ छोड़ूँ कि मैंने अपनी सभा को दो धारणाओं से प्रभावित किया हैं—(१) संगीत की सामूहिक शिक्षा आवश्यक है और (२) विषय को पद्धतिबद्ध करने वाली पाठ्यपुस्तकों की सहायता से यह सम्भव है। यदि मैंने ऐसा कर दिया तो मुझे विश्वास है कि मेरी सहमत हुई सभा इस अमृत को प्राप्त करने के लिए मन और मस्तिष्क जुटाकर कार्य करेगी और निर्माण-कारक या संहारक राजनैतिक आन्दोलन के तीव्र प्रचार के समान तीव्र प्रचार कर हेतु को प्राप्त करेगी। यहाँ दृष्टिकोण परिवर्तित करना होगा। लोग यह विश्वास करने लगेंगे कि उन्होंने अपने जीवन में एक आवश्यक गुण खो दिया और वे यह अनुभव करेंगे कि वे अपने जीवन में इस गुण को भी प्राप्त करें। और वे इस गुण की ओर उसी लालच से भागेंगे जो बलवान को शक्ति संचय के लिये और जो कृपण को धन संचय के लिये बाध्य करती है।

मैं अब यहाँ बहुत थोड़े शब्दों में यह दिखाऊंगा कि अध्ययन सरलता पूर्वक कैसे किया जा सकता है। विद्यार्थी सङ्गीत के सारभूत, स्वरों से प्रारम्भ करता है और अपनी आधारशिला पठित गायन सीखने के लिये सच्चे स्वरज्ञान पर आश्रित करता है। वह श्यामपट पर लिखे किसी भी स्वर समुदाय को पढ़ सकता है। इसके बाद उसे दस थाट या मेल सिखाये जाते हैं और यह बताया जाता है कि किस प्रकार प्रचलित राग दस प्रमुखों में बाँटे जा सकते हैं। सभी विषय-सामग्री पाठ्यपुस्तकों में इतनी सावधानी और विवेचनात्मक ढंग से रखी गई है कि आजकल गाये जानेवाले रागों का थोड़े से समय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि पूरे समय के संगीत विद्यालय में सब पाठ्यक्रम सिखाने में चार वर्ष से अधिक नहीं लगने चाहिये और इस काल के अन्त में विद्यार्थी को

ठोस ज्ञान प्राप्त हो जायगा जिसे अभ्यास सच्चा बनावेगा। कुछ संस्थाओं में जो इस विषय की प्रतिनिधि हैं ऐसे पाठ्यक्रम बनाये गये हैं और बहुत सन्तोषप्रद परिणाम निकले हैं।

मूलतः अंग्रेजी से अनुवादित

अनुवादक—अमरेशचन्द्र चौबे, खैरागढ़